

# भारत में अंग्रेजी की समस्या

पल्लव

**अं**ग्रेजी के नाम से ही हम भारतीयों के मन में अकसर दो तरह की भावनाएं दौड़ती हैं एक संभ्रांत हो जाने की और दूसरी घबराहट की। कहना न होगा कि वे दो तरह के लोग कौन-कौन से हैं। हिन्दी से रोजी-रोटी कमाने वालों के लिए अंग्रेजी और ज्यादा मुसीबत का नाम है क्योंकि उन्हें हमेशा अंग्रेजी से अपनी तुलना देखनी होती है और यह तुलना बहुधा नीचा दिखाने वाली होती है। मुलायम सिंह यादव की लोकप्रिय राजनीति को छोड़ दें तो इधर लोहिया के बाद किसी राजनेता या राजनैतिक दल ने कभी इस समस्या को विचारणीय भी नहीं समझा। हद तो तब हो जाती है जब हिन्दी प्रदेशों की समस्याओं और इन पर कार्रवाई के सवालों पर चर्चा भी अंग्रेजी में होती है। यह सचमुच विचारणीय प्रश्न है कि हमने अंग्रेजी को ज्ञान का ऐसा भारी पर्याय मान लिया है कि इसके समक्ष सारी योग्यताएं फीकी पड़ती नजर आती हैं। दुनिया के किसी देश ने अपनी भाषा/भाषाओं के साथ ऐसा नहीं किया होगा जैसा बर्ताव हम अंग्रेजी के कारण हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओं के साथ करते हैं। ऐसे में इस विषय पर कोई पूरी किताब (और वह भी सर्वेक्षण पर आधारित) आना सचमुच स्वागत योग्य है। रमाकांत अग्निहोत्री और ए. एल. खन्ना की किताब हाल में एकलव्य से आई है जिसका नाम है- 'भारत में अंग्रेजी की समस्या', यह किताब इस समस्या के संभावित सभी पहलुओं पर विचार करती है और किन्हीं अवास्तविक/हवाई निष्कर्षों को देने से बचती है। ब्रिटिश काउंसिल की मदद से रमाकांत अग्निहोत्री और ए. एल. खन्ना के शोध पर आधारित इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद बरुन कुमार मिश्रा ने किया है।

## परिचय

लगभग एक दशक से हिन्दी साहित्य का अध्यापन, हिन्दी की लघु पत्रिका 'बनास' के संपादक। संप्रति : हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्राध्यापक हैं।

पुस्तक का प्रारम्भ जिस समस्या के साथ हुआ है वह है- 'भारत में अंग्रेजी की भूमिका, हैसियत व कार्य को आम आदमी तथा विद्वानों, दोनों ने बार-बार बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया है, मगर बहुभाषी भारतीय लोकाचार में इसकी स्थिति की सावधानीपूर्वक छानबीन नहीं की गई है।' दूसरी ओर लेखकों की अपनी मान्यता है कि भाषा का पाठ्यक्रम बच्चों की शिक्षा के केंद्र में होना चाहिए तथा इसका उद्देश्य भाषा की संरचना व प्रकृति तथा समाज से उसके संबंधों के बारे में समीक्षात्मक ज्ञान कराना होना चाहिए। कोई आश्चर्य

नहीं कि उनकी यह सद्भावना भारत में अंग्रेजी नामक दायरे को पुनर्भाषित करने की जरूरत पर बल देती हुई बढ़ती है।

कुल आठ अध्यायों में फैली इस पुस्तक में आगे जिन बिन्दुओं की रोशनी में समस्या पर विचार किया गया है, वे निम्न हैं- भाषा व सत्ता, साम्राज्यवादी मंसूबे, आजाद भारत में अंग्रेजी, अंग्रेजी शिक्षण पद्धति, वर्तमान अध्ययन, भारत में अंग्रेजी के सामाजिक व व्यक्तिगत पहलू और संभ्रांत विचार। अंग्रेजी के बारे में दो बातें जो जान लेनी चाहिए वे ये हैं कि ज्ञान के विषय के रूप में सबसे पहले भारत में ही इसकी पढ़ाई शुरू हुई और जैसा अपनी पुस्तक में 'भारत के स्वधर्म' में धर्मपाल ने बताया है कि अंग्रेजों का मंसूबा हमारी पारंपरिक शिक्षा पद्धति को नष्ट करना था। अतः उन्होंने भारत के शिक्षा रूपी पौधे की गहराई को जानने के लिए उसकी जड़ों को उखाड़कर देखा और फिर सूख जाने के लिए छोड़ दिया। यह पुस्तक इन सभी कारणों के बारे में अध्ययन करती है और इन बातों को पुख्ता तौर पर स्थापित करती है। साम्राज्यवादी मंसूबे शीर्षक अध्याय में बताया गया है- 'भारत में अंग्रेजी अध्ययन का सुदृढ़ीकरण इंग्लैंड के औपनिवेशिक शक्ति के रूप में सुदृढ़ बनने व यूरोप में अंग्रेजी साहित्य के पुख्ता होने के साथ-साथ हुआ। एक साहित्यिक सूची पत्र तैयार किया गया जिसमें चौसर, बेकन, मिल्टन, शेक्सपीयर, ड्राइडेन, पोप, वर्डस्वर्थ, कालरिज, कीट्स इत्यादि की रचनाओं का एक पुलिंदा भारत में यह कहकर प्रस्तुत किया गया कि ये साहित्य की सर्वोत्तम कृतियां हैं, यह कहा गया कि "इन पुस्तकों का एक खाना समस्त प्राच्य साहित्य के बराबर" है। अलबत्ता यह मूल्यांकन वास्तव में बहुत कठिन है कि इस सूची पत्र का भारतीय मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा। हुआ यह कि भले ही अपनी भाषा के साहित्य का ज्ञान हो या न हो किन्तु हर शिक्षित भारतीय, अभी हाल तक, इस सूची पत्र की कसमें खाता था। संस्कृति किस तरह साम्राज्यवादी एजेंडे के लिए सहायक हो सकती है इसका उदाहरण यह प्रसंग है।

उम्मीद थी कि आजाद भारत में चीजें बदलेंगी लेकिन भाषा विवादों में चीजें और विरूपित हुईं। 1966 के भारतीय शिक्षा आयोग एक रिपोर्ट को पुस्तक में उद्धृत किया गया है, जिसे लेखक उस दौर की 'संभ्रांत सोच' कहते हैं- 'प्रथम उपाधि पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए विद्यार्थी को अंग्रेजी भाषा में पर्याप्त महारत होनी चाहिए, वह स्वयं को पर्याप्त सुगमता व सहजता से अभिव्यक्त कर सके, अंग्रेजी व्याख्यान समझ सके तथा अंग्रेजी साहित्य पढ़ सके। अतः विद्यालय की अवस्था से ही एक भाषा के रूप में अंग्रेजी अध्ययन पर समुचित जोर देना होगा।



### भारत में अंग्रेजी की समस्या

रमाकांत अग्निहोत्री और ए. एल. खन्ना  
एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी  
शिवाजी नगर, भोपाल- 462016  
वर्ष : 2011; मूल्य : 90/-

अंग्रेजी उच्च शिक्षा में सबसे उपयोगी 'पुस्तकालय भाषा' तथा हमारे लिए बाह्य विश्व की ओर खुलने वाला सबसे महत्वपूर्ण झरोखा भी होनी चाहिए। 'कहना न होगा कि उपनिवेश होने की मानसिक गुलामी किस कदर इस दौर में व्याप्त थी। इसी दौर में भाषा विवाद भी हुए। हुआ यह कि दक्षिण के राज्यों को हिन्दी की वर्चस्वशीलता का आभास होने लगा और तब मजबूरन सरकार को 1961 में त्रिभाषा फार्मूला लाना पड़ा। इसे विडम्बना कहें या हिन्दी पट्टी की मानसिक गुलामी का प्रमाण जो वह अपनी ही भारतीय भाषाओं को जरूरी नहीं मानती और यह हुआ कि तीसरी भाषा के रूप में 'अधिकतर हिन्दी भाषी राज्यों ने संस्कृत पढ़ाना पसंद किया। जबकि त्रिभाषा फार्मूले की भावना यह थी कि उत्तर भारत (हिन्दी भाषी) राज्यों में प्रयास होना चाहिए कि वहां दक्षिण, पूर्व या पश्चिम भारत की एक भाषा तीसरी भाषा के तौर पढ़ाई जाए। यह अकारण नहीं कि हिन्दी पट्टी के लोग अधिकांश दक्षिणी या उत्तर-पूर्वी विभूतियों को नहीं जानते। भाषा वह सेतु हो सकती थी जिस पर चलकर भारत आपस में सुदृढ़ होता लेकिन हम ऐसा नहीं कर सके... अब तक भी नहीं।

पुस्तक में उस सर्वे को भी तथ्यों की पुष्टि के लिए आधार बनाया गया है जिसमें देश के अनेक आय वर्गों व भिन्न-भिन्न पेशे वाले नागरिकों से अंग्रेजी के बारे में पूछा गया था। आश्चर्य नहीं कि सर्वे

बताता है कि निम्न आय वर्ग के लोगों में अपने बच्चों को अंग्रेजी सिखाने का भारी दबाव है वहीं उच्च वर्ग के लोग शिक्षा के सभी क्षेत्रों में अंग्रेजी चाहते हैं। पुस्तक में सर्वे के कई अंश उद्धृत किए गए हैं जिनमें से एकाध देखना चाहिए- “अंग्रेजी किसी की मातृभाषा नहीं है अतः किसी प्रतियोगी परीक्षा में लाभ-हानि सबके बराबर हैं।” वहीं बांग्ला भद्रलोक के एक वकील का कहना है कि “अंग्रेजी एक अत्यंत विकसित भाषा है, अंग्रेजी पढ़ना वास्तव में आनंददायक है। बंगाली में हम खाना खाते हैं, पानी खाते हैं, सिगरेट खाते हैं, जबकि अंग्रेजी में इन सबके लिए अलग-अलग शब्द हैं। यह एक अद्भुत भाषा है।”

एक तरफ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के माध्यम से मातृभाषा में पढ़ाई की बातें की जा रही हैं और दूसरी तरफ अंग्रेजी का ऐसा वर्चस्व कि अंग्रेजी माध्यम के अच्छे-बुरे स्कूलों की बाढ़-सी दिखाई पड़ रही है, यह इस परिदृश्य की जटिलता को ही दिखाता है। हम जानते हैं कि आम तौर पर हमारे सरकारी विद्यालयों में अंग्रेजी के अध्यापन का स्तर यह है कि बारहवीं का विद्यार्थी भी बहुधा अंग्रेजी के वाक्य बनाने और सही उच्चारण करने में गड़बड़ा जाता है। यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं कि कॉलेजों में अंग्रेजी साहित्य की पढ़ाई का अर्थ भी संबंधित रचना का हिन्दी अनुवाद बता देना ही समझा जाता है।

विचार करना चाहिए कि क्या किया जाता/(जा सकता है) जिससे

यह संकट न खड़ा होता कि देशवासी अपनी भाषाओं की अपेक्षा विदेशी भाषा के पीछे न भागते। सबसे बड़ी जिम्मेदारी उन लोगों और संस्थाओं की है जिन्हें हिन्दी को भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाने का ठोस काम करना था। आखिर हिन्दी में तमाम तरह का ज्ञान और सूचनाएं क्यों नहीं हैं? साहित्य से भाषाएं सुन्दर भले लगें, उनके विकास के लिए समाज विज्ञान और तकनीक में उनका होना बहुत जरूरी है। स्थिति यह है कि हिन्दी का बढ़िया शब्दकोष भी हम ऑक्सफोर्ड में खोजते हैं। पुस्तक के निष्कर्ष को यहां उद्धृत कर दिया जाना सर्वथा प्रासंगिक होगा जहां लेखकों ने बताया है कि- ‘सत्ता के कुछ हिस्सों को अंग्रेजी के चंगुल से निकालकर स्थानीय भाषाओं - जिनका जायज अधिकार उन हिस्सों पर होना चाहिए- को सौंपने के लिए कितना संघर्ष करना होगा। कम से कम भारत के कुछ इलाकों में तो कुछ परिवर्तन शुरू हो ही गया है जहां शिक्षा, पत्रकारिता, प्रशासन, न्यायपालिका आदि में क्षेत्रीय भाषाएं अंग्रेजी को विस्थापित करने लगी हैं। हमें आवश्यकता है भाषा नियोजन में इससे ज्यादा आमूल दृष्टि परिवर्तन की जिसमें अंग्रेजी भारत के बहुभाषी लोकाचार को तबाह करने के बजाय उसका निर्वाह करे। कहना न होगा कि धीरे-धीरे अंग्रेजी भारत में एक शक्तिशाली और वर्चस्व का प्रतीक बन चुकी है। हाल-फिलहाल इसके टूटने के कोई कारण नहीं दिखाई पड़ते, फिर भी हमें हार मानकर इस स्थिति को स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। ♦

---

विगत कुछ दशकों में भाषा शिक्षण की सारी विधियां छात्र केन्द्रित हो गई हैं। चाहे वह संप्रेषण विधि हो या सजेस्टोलॉजी (Suggestology), मॉनीटर मॉडल हो या समग्र शारीरिक प्रतिक्रिया का तरीका, प्रक्रियागत पाठ्यक्रम या कार्याधारित पाठ्यक्रम, पूरा जोर सीखने वाले की सुविधा, आवश्यकता, अभिप्रेरणा तथा सहजता पर है। सामान्यतया इन तरीकों में उत्पाद की सृजनशीलता, रुचिपूर्ण अभ्यासों व स्थितियों में छात्र की सक्रिय भागीदारी, सामग्री की प्रमाणिकता व शिक्षक की मददगार भूमिका को महत्त्व दिया जाता है। भारत में ये तरीके हाल ही में आए हैं तथा प्रायोगिक स्तर पर इनको परखा जा रहा है। चूंकि मैकाले का भूत अब भी हम पर सवार है, इसलिए अंग्रेजी भाषा के अधिकतर व्यवहारदर्शी अंग्रेजी भाषा व साहित्य की ‘श्रेष्ठता’ से उबार नहीं सके हैं।

(समीक्षित पुस्तक के पेज 48 से)

मुझे यह कहते हुए काफी अफसोस हो रहा है कि किसी समूह में यदि एक दसवीं पास व्यक्ति है जो काफी अच्छी अंग्रेजी बोलता है व एक आईएएस अधिकारी है जो अच्छी अंग्रेजी नहीं बोलता, तो अंग्रेजी बोलने वाला ही लोगों का सारा ध्यान आकृष्ट करेगा। उसे अधिक शिक्षित माना जाएगा।

(जैसा सर्वे में असम के व्यक्ति ने बताया, समीक्षित पुस्तक के पेज 108)